

स्त्री एवं स्त्रीवादी साहित्य की भाषा

सुनील कुमार यादव

वरिष्ठ शोध अध्येता, हिंदी विभाग, कर्नाटक केन्द्रीय विश्वविद्यालय,

कलबुर्गी, कर्नाटक - ५८५३६७

मानव-मन का सोचना, विचार करना या अनुभव करना एक भाषा के माध्यम से ही अभिव्यक्त होता है। ऐसे में भाषा का प्रमुख उद्देश्य ही है- विचारों का आदान-प्रदान करना। भाषा के सम्बन्ध में आ. कामताप्रसाद गुरु का कहना है की- भाषा वह साधन है जिसके द्वारा मनुष्य अपने विचार दूसरों पर भली भांति प्रकट कर सकता है और दूसरों के विचार स्वयं स्पष्टतया समझ सकता है।ⁱ स्पष्ट है की कथा की भाषा पहले से ही समाज में विद्यमान होती है। मानवीय व्यवहारों में प्रचलित और साहित्यिक होती है। कथा भाषा के साहित्यिक रूप के प्रमुख गुण और आयाम सर्जनात्मकता, कल्पनाशीलता और सौन्दर्यबोध होता है। कथा भाषा अनुभव को एक विशिष्ट रूप को प्रस्तुत करती है। कथा भाषा के विविध रूप, यथार्थ की रचना की विविध शैलियाँ कही जा सकती है, जिनका प्रयोजन होता है, प्रभावोत्पत्कता और व्यक्ति-समाज की भाषा के यथार्थ का प्रस्तुतीकरण।

निर्मल वर्मा की दृष्टि में भाषा का विशेष महत्व है। इस परिप्रेक्ष्य में उनका मानना है की भाषा कला-विशेष का अंतिम सत्य है और जिसका सत्य, भाषा से अलग नहीं किया जा सकता। इस सन्दर्भ में उनका कहना है की- संस्कृति, जनमानस और वैचारिक स्वायतता, इन तीनों के बीच गहरा सम्बन्ध है। भाषा इनके बीच एक जोड़ने वाली कड़ी का काम करती है।ⁱⁱ उनके अनुसार भाषा के अभाव में जनमानस, अपनी संस्कृति और वैचारिक स्वतंत्रता खो बैठता है। भाषा के अभाव में व्यक्ति की अन्तर्दशा, आत्म-उन्मूलन की स्थिति में पहुँच जाती है। निर्मल इस अवस्था को अपनी भाषा में कहते हैं- वह स्वयं अपने आत्म से निर्वासित हो जाता है जो आत्म-उन्मूलन की चरमावस्था है।ⁱⁱⁱ

स्त्री की भाषा और पुरुष की भाषा में स्वभावतः अंतर होता है। स्त्री-पुरुष दोनों की ही भाषा के मानदंड अलग-अलग होते हैं, चाहे वह 'पाठ' के आधार पर हो या 'बोलचाल' की भाषा के आधार पर। एक पुरुष द्वारा किये गये 'पाठ' और एक स्त्री द्वारा किये गये 'पाठ' की प्रकृति में भी भिन्नता होती है। इस संदर्भ में प्रभा खेतान का कहना है की- स्त्री-लेखन और पुरुष लेखन में फर्क होता है और रहेगा...क्योंकि स्त्री और पुरुष आज भी इस पितृसत्तात्मक समाज में जैविक, आर्थिक, सामाजिक धरातल पर भिन्न हैं।^{iv} मान्यतया पुरुष भाषा के मानदंड के आधार पर ही स्त्री-भाषा को

विक्षेपित किया जाता रहा है और इसे ही बाद में आदर्श मान लिया गया। पर वर्तमान में यह आवश्यक है की स्त्री-भाषा को भिन्न भाषिक-संरचना में विक्षेपित किया जाये, जिसे पितृसत्तात्मक भाषा के आग्रहों और दवाबों से मुक्त होना अतिआवश्यक है। यदि स्त्री द्वारा कहे-लिखे गये शब्दों पर गौर किया जाये तो ऐसे अनेक अर्थ मिल जाते हैं जो स्त्री-जीवन की अपेक्षा उनके संघर्ष की व्याप्ति और वास्तविकता को गहरे रूप में प्रकट करते हैं। जो इस तथ्य की पुष्टि करता है की स्त्री-भाषा, अपनी प्रकृति और स्वभाव में एक पुरुष भाषा से स्वभावतः भिन्न है। अनामिका स्त्री-भाषा के स्वरूप और पुरुष-भाषा से उसकी भिन्नता को रेखांकित करती हुई लिखती हैं- “औरतों की भाषा का एक अलग मिजाज है जिसे कैनन में प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए। कैथरीन आर. सिम्पसन इसे बड़े कायदे से ‘भाषा की उछाल और उल्लास’ कहती हैं। पुरुष की ‘लिबिडल इकोनॉमी’ का बीज-शब्द है ‘संपत्ति’ और स्त्री की ‘लिबिडल इकोनॉमी’ का बीज-शब्द ‘उपहार’, एक ऐसा अवदान जिसका दाम वसूलने की कोशिश कभी की ही न जाए, इसलिए उसमें ऐसा बहुत कुछ वंचित रह जाता है जिसे उच्छल अभिव्यक्ति की आवश्यकता होती है।”

स्त्री-भाषा का बिम्ब, शब्द-चयन, टोन और प्रवाह सब पुरुष-भाषा से भिन्न होता है। स्त्री-भाषा का एक अपना ही सौन्दर्यशास्त्र है जिसके बारे में अनामिका का कहना है की- “स्त्री-भाषा देवदार की पेटी से जैसे की पुराने बर्तन, पुराने मुकदमे के कागज, अजब-गजब लोकोक्तियां, लोरियां और लोकगीत। भाषा की दीवार पर हाथों की मरियाली थपकन से सपनों और जातीय स्मृति का अतिवात लिखती हैं स्त्रियों की भाषा। स्त्रियाँ न हो तो भाषा की जातीय अनुगूंजे गायब हो जायें। अकारण नहीं है की नानी-दादी, घर या मुहल्ले की वृद्धाओं की संगति में पलने वाले बच्चों की भाषा में एक अलग अनुगूंज होती है। भाषा के साथ ‘मात्री’ का प्रयोग उसे अलग तरह का ताकत देता है- माँ की दूध की ताकत बतरस की लहक! आँचल का दूध, आँखों का पानी और बतरस – तीनों मिलजुलकर भाषा का दशमूलारिष्ट और ग्राईपवाटर पिला देते हैं। नवजातक की तरह अपनी जंघा पर उलट-पुलट कर भाषा की मालिश करती हैं, स्त्रियाँ अनौपचारिक सी उमंग और संवादधर्मिता डेमोक्रेट के गुण हैं। कंधे पर हाथ रखकर घरेलू बिम्बों में सहज ढंग से कोई डेमोक्रेट ही बतिया सकता है। इससे यह सहज प्रमाणित होता है की स्त्री दृष्टि एक प्रजातान्त्रिक दृष्टि है और आज प्रजातान्त्रिक दृष्टि और प्रजातंत्र की जरूरत स्वयं सिद्ध है।”^v

मैनेजर पाण्डेय ने भी अपने एक साक्षात्कार में कहा है- “सारी दुनिया में भाषाओं के निर्माण, विकास और संरक्षण का काम सबसे ज्यादा स्त्रियों ने किया है। ... यह अकारण नहीं है कि दुनिया में भाषाओं को केवल मातृभाषा कहा जाता है, कहीं पितृभाषा नहीं कहा जाता है।” यह बिडम्बना ही है कि मातृभाषाओं में पितृसत्ता की राजनीति हावी रही। नाम तो उसका मातृभाषा है, लेकिन सेवा वे

पितृसत्ता की करती रहीं। मातृभाषा में पितृसत्ता की राजनीति कब और किस प्रकार आई; इस बात की पहचान और खोज स्त्री अस्मितावादी भाषा-विमर्श का प्रमुख विषय है। इसी लिए स्त्री-विमर्श जिन विषयों पर ध्यान केंद्रित करता है, उनमें भाषा प्रमुख है। स्त्री-अस्मिता भाषा के प्रश्न को लेकर जिस प्रकार गंभीर और सजग है, उससे अस्मिता-विमर्श और भाषा के संबंध का पता चलता है। स्त्री की भाषा आज की अनिवार्यता है। स्त्री के विचार, भाषा और संस्कृति से सम्पन्न एक सहज, स्वाभाविक, अहिंसात्मक, ममतापूर्ण वातावरण सर्वत्र अनिवार्य है, चाहे वह राजनीति का क्षेत्र हो या अर्थ का हो या फिर समाज का।

जब एक स्त्री कुछ कहती है तो वह अपनी पहचान निर्मित करती है और जब लिखती है तो अपनी अस्मिता का पुनर्निर्माण करती है। यहाँ यह देखना भी आवश्यक है की कहते-लिखते समय स्त्री किस भाषा को अपना माध्यम बनती है, पुरुष-भाषा को या अपनी स्त्री-भाषा को? यदि उसका माध्यम पुरुष-भाषा होता है तो इसका अर्थ हुआ वह अपने को पुरुष परम्परा से जोड़ती है। वैसे एक स्त्री की अपनी भावनाओं और मनोदशाओं की अभिव्यक्ति के लिए स्त्री की निज भाषा का ही प्रयोग करना चाहिए क्योंकि जब एक स्त्री की अनुभूति स्त्री-भाषा में संप्रेषित होगी तो इससे स्त्री-अस्मिता का निर्माण होगा। एक परिचर्चा में प्रो. नामवर सिंह ने स्त्री भाषा की तुलना चिड़िया से करते हुए कहा कि स्त्री की भाषा मुक्त है व आकाश छू सकती है। अनामिका फिर स्मरण दिलाती हैं की स्त्री का एक घर ही भाषा ही होता है- **भाषा स्त्री का एकमात्र घर होती है- सर के ऊपर की एकमात्र छत जहां से धक्के मारकर निकालना किसी की भी खातिर संभव नहीं है।^M**

भाषा अगर मनुष्य को सभ्य और न्यायप्रिय बनाती है, उसमें समता का भाव जगाती है तो वही शोषण और उत्पीड़न का माध्यम भी है। एक भाषा ने दूसरी भाषा पर वर्चस्व बनाया और विजित जातियों के लोगों के बारे में अपने पूर्वग्रहों और भेदभावों को व्यक्त किया तथा उनके बारे में झूठे प्रचार किये और उनको हीन साबित किया। उनकी मानसिकता को जीतने और उनको हतोत्साहित करने के लिए उनके बारे में गलत और आपत्तिजनक विचारों को स्थापित और प्रचारित किया। अगर उत्पीड़ित और उत्पीड़क की भाषा अलग-अलग हो तब उतनी समस्या नहीं होती, लेकिन जब दोनों एक ही भाषा का व्यवहार बहुत लंबे समय से करते आ रहे हों तब उत्पीड़ित अस्मिताओं को अपने साथ हुए अन्याय का बोध भाषा करा देती है, तब यह भाषा उनकी अनुभूतियों और विचारों को अभिव्यक्ति देने में अक्षम साबित होती है।

उत्पीड़ित लेखकों को ऐसी भाषा अधूरा और अन्यायपूर्ण आत्मबोध और जगद्बोध देती है। ऐसी स्थिति में लेखकों को भाषा के लिए संघर्ष करना पड़ता है और अपनी भाषा विकसित करनी पड़ती है। इसके लिए जरूरी है की स्त्री की मानसिक चेतना पुरुष की दासता से मुक्त हो, क्योंकि स्त्री

मुक्ति का प्रश्न देह-मुक्ति और मानसिक-मुक्ति के प्रश्न से जुड़ता है। देह के प्रति असुरक्षा ही देह को बनाती है। सामाजिक नियमों के प्रति भय से मुक्ति ही मानसिक मुक्ति है। स्त्री स्वयं जब देह और मानसिक भय से मुक्ति प्राप्त करेगी तभी स्त्री की सामाजिक मुक्ति हो सकेगी।^{vi} यह स्त्री-भाषा की सर्जनात्मकता के लिए अनिवार्य-आवश्यक शर्त है।

बीसवीं सदी के अंतिम दशक में जब स्त्री और दलित अस्मिताओं ने अपना आत्मरेखांकन आरंभ किया और उसके लिए साहित्यिक और सामाजिक विमर्श चलाया तब उन्हें इस बात का एहसास हुआ कि जिस भाषा में वे अपने अनुभवों और विचारों को व्यक्त करने की कोशिश कर रहे हैं, वह उनके लिए पर्याप्त साबित नहीं हो पा रही है। इसलिए नब्बे के दशक में स्त्री और दलित-अस्मिता-विमर्श और साहित्य और आलोचना के उभार के साथ-साथ हिन्दी में भाषा और अस्मिता के प्रश्न भी सतह पर आते गये। स्त्री अस्मिता के निर्माण में भाषा की भूमिका कैसे तय होती है, इस संदर्भ में नामवर सिंह का वक्तव्य देखा जा सकता है- **भाषा नियामक है और सृजनशीलता के लिए सबसे बड़ी चुनौती है- भाषा का निर्माण और नियमन करने की क्षमता। इसीलिए जब आप कोई क्रान्तिकारी बात कहना चाहेंगे तो उसमें बाधा देने वाली राजसत्ता और सामाजिक व्यवस्था तो बाद में आएगी। सबसे पहले तो भाषा आएगी जो आपकी बनायी हुई नहीं है। इसलिए सृजनशील रचनाकार अपने लिए नई भाषा बनाता है।**^{vii}

स्त्री की भाषा में स्त्री-जीवन की समस्त कठिनाईयों, उसकी पीड़ा, छटपटाहट और उसकी मुक्ति की आकांक्षा बुनी-गुंथी रहती हैं- **भाषा अतीत की स्मृतियों और भविष्य की संभावनाओं के बीच झूलती हुई रौशनी की रस्सी की तरह है, जिसपर स्त्रियाँ नंगे पाँव का कठिन सफर नाचती हुई सी पूरा करती हैं। कुशल नटनियों की तरह।**^{ix} भाषा ही स्त्रियों का वह हथियार है जो उनकी अस्मिता की तलाश को पूरा करती हैं। स्त्रियों की भाषिक संरचना पर बात करती हुई अनामिका कहती हैं की- **हाशिये पर रहने वालों की भाषा हमेशा जीवंत, रंग-रंगीली और ठस्सेदार होती है। पता नहीं किन स्रोतों से, क्षतिपूर्ति के सिद्धांत के अनुकूल उनकी भाषा में एक अलग तरह की रवानी तेजस्विता और अनुगूँज खचाखच समा जाती है। इसका सबसे स्पष्ट प्रमाण स्त्रियों की भाषा है।**^x

भिन्नताओं की स्वीकृति और समायोजन में समर्थ बहुमुखता स्त्री-स्वभाव का मूल है। स्त्री और स्त्रीत्व की भाषा का स्वभाव भी यही है। वह व्याकरण का उल्लंघन और संप्रेषण के नियमों का अतिक्रमण करके अपनी अंतरंग लय खोजती है। वह अर्थ की अनेक दिशाओं में एक साथ प्रस्थान करती है। पुरुष के लिए अर्थ के विषय में वह प्रायः अस्पष्ट और अनिश्चित साबित होती है। **अतीत में स्त्री ने विरोध की भाषा नहीं सीखी थी। पर आज की स्त्री सही मायनों में प्रतिरोध की भाषा**

समझती है।^x प्रतिरोध से निकली यह भाषा 'निर्बुद्धि' नहीं, लेकिन एक भिन्न प्रकार से बौद्धिक या फिर बौद्धिकता से परे है; तर्कहीन नहीं, किंतु परिचित अर्थों से अवश्य तर्कातीत।

हिन्दी के भाषाशास्त्रीय चिंतन में स्त्रियों की भाषिक समस्याओं को महत्व नहीं दिया गया है। इसलिए आज भी स्त्रियों की भाषा का मूल्यांकन पुरुषों के भाषिक मानदंडों के आधार पर होता है। आ. रामचन्द्र शुक्ल का भी कथन है की प्रत्येक भाषा की लाक्षणिक प्रकृति उसके बोलने वाले की अंतः प्रकृति के संस्कारों के अनुरूप होती है। जब स्त्री लेखन की भाषा पुरुषों से भिन्न है तब उसके अध्ययन के लिए भी पुरुषवादी भाषिक मानदंड बेकार साबित हो जाते हैं। इसलिए पुरुषों को स्त्री साहित्य का अध्ययन करने के लिए अपने भाषिक मानदंडों को बदलना पड़ेगा।

स्त्रियों की भाषा की पुरुषों की भाषा से भिन्नता को रेखांकित करते हुए और स्त्री-पुरुष भाषाओं के लिए अलग-अलग मानदंडों की बात को उठाते हुए जगदीश्वर चतुर्वेदी ने ठीक ही लिखा है, "स्त्रियों की कृतियों को पढ़ते समय भिन्न किस्म की भाषिक संरचना और पठन शैली की जरूरत होती है। स्त्री भाषा को आमतौर पर पुरुष भाषा के मानदंडों से ही देखा गया है। दूसरी महत्पूर्ण बात यह है कि हमने कभी महसूस ही नहीं किया कि हमारी भाषाशास्त्रीय सैद्धांतिकी लिंगभेदीय पूर्वग्रहों से ग्रस्त है। फलतः पुरुष की भाषा को स्त्री भाषा का आदर्श बताया गया। स्त्री की भाषा पुरुष की भाषा से भिन्न हो सकती है? या है? यह प्रश्न आज साहित्य समीक्षा में सबसे ज्यादा विवादास्पद है। स्त्री की भाषा पुरुष की भाषा से एकदम भिन्न होती है अतः उसके मानदंड भी भिन्न होंगे स्त्री भाषा को निर्धारित करने वाले तत्व सिर्फ "पाठ" में ही नहीं होते बल्कि "पाठ" से बाहर भी होते हैं।" होना भी यही चाहिए की- स्त्री की भाषिक अपंगता को उसकी प्रतीकात्मक अस्मिता में खोजने की बजाय उसकी शक्तिहीनता में खोजना चाहिए।^{xi} इससे मालूम पड़ता है की स्त्री-भाषा के सशक्तिकरण करने के लिए भी समुचित प्रयास आवश्यक है।

मानव-चेतना का प्रभाव स्त्री-पुरुष भाषा पर भी पड़ता है। चेतना और भाषिक संरचना का भी परस्पर गहन सम्बन्ध होता है। मैनेजर पाण्डेय के शब्दों में- कथा कहने की कला का कथा कहने वाले या कथा कहने वाली की चेतना का गहरा सम्बन्ध होता है। कथा कहने के ढंग में सोचने का ढंग भी निहित होता है।^{xii} इसका कारण है की सामाजिक परिस्थितियों का प्रभाव मनुष्य की चेतना पर पड़ता है और इस चेतना की भाषिक चेतना या संरचना पर- सामाजिक परिस्थितियों का जैसा प्रभाव भावों और विचारों पर पड़ता है, वैसा ही प्रभाव उसको व्यक्त करने वाली शैली, व्यंजना के ढंग, शब्द-चयन, वाक्य-विन्यास आदि पर भी पड़ता है।^{xiii} इस स्त्री-भाषा और स्त्री के संघर्ष में निश्चित ही एक सम्बन्ध होता है जिसे जगदीश्वर चतुर्वेदी प्रकट करते हैं- स्त्री के हितों की लड़ाई का स्त्री-भाषा के निर्माण की प्रक्रिया से गहरा सम्बन्ध है। स्त्री-हितों की रक्षा एवं विस्तार की कोशिश

जितनी तेज़ होगी, स्त्री-भाषा के निर्माण की संभावनाएं उतनी ही प्रबल होंगी। स्त्री-संघर्ष के बगैर स्त्री-भाषा संभव नहीं है। उसी तरह स्त्री के भाषा के बगैर स्त्री के संघर्ष को सही दिशा दे पाना संभव नहीं है।^{xv} इस तथ्य से यह स्पष्ट है की बिना संघर्ष के स्त्री-भाषा का निर्माण संभव नहीं है और बिना भाषा के स्त्री के लिए आत्मभिव्यक्ति।

स्त्रीवादी भाषा विमर्श ने इस बात को रेखांकित किया है कि, दुनिया की सभी भाषाएं पुरुषवादी हैं। ये पुरुषवादी भाषाएं स्त्रियों के आत्मबोध और जगद्बोध को खंडित और अधूरा बनाती हैं। इनके प्रयोग से कभी वे अपनी अस्मिता और अस्तित्व की खोज नहीं कर सकती हैं। स्त्रीवादियों ने इस बात को स्थापित किया है कि पुरुषों की भाषाओं ने स्त्रियों की अपनी भाषिक विशेषताओं का जान-बूझ कर दमन किया है। पुरुषों की भाषा स्त्रियों की भाषा की विशिष्टता और भिन्नता को खारिज करती है और उनके साथ भाषिक न्याय करने की बजाय अपने वर्चस्व को स्थापित करती हैं। इसलिए पुरुष-भाषा स्त्रियों के लिए समग्र और सामान्य भाषा नहीं हो सकती है।

यह स्पष्ट है की सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य जो पुरुष प्रधान मानसिक बुनावट रचते हैं, वही मूल्य स्त्री-भाषा के सम्प्रेषण में बाधक भी होती है। ऐसे में आवश्यकता इस दिशा में प्रयत्न करने की भी है की ऐसे स्त्री-विरोधी मूल्यों की पहचान करके उनके स्थान पर लोकतान्त्रिक मूल्यों को महत्व दिया जाये। अगर ऐसा संभव हो सका तो स्त्री-लेखन, स्त्री-अभिव्यक्ति, और स्त्री-भाषा अपने सही और सार्थक रूप में संप्रेषित हो सकेगी।

सन्दर्भ :-

- ⁱ हिंदी व्याकरण१ पृष्ठ ,कामता प्रसाद गुरु ,
- ⁱⁱ दुसरे शब्दों में१०८ पृष्ठ ,निर्मल वर्मा ,
- ⁱⁱⁱ आदि०४ पृष्ठ ,निर्मल वर्मा ,आरंभ ,अंत ,
- ^{iv} हंस पत्रिका१९९४ जून ,, पृष्ठ ६५
- ^v इको४८ पृष्ठ ,वनजा .के ,फेमिनिज्म-
- ^{vi} साहित्य में नारी चेतना१९९ पृष्ठ ,दयानिधि मिश्र ,
- ^{vii} हंस पत्रिका१९९४ जून ,, औरत उत्तरकथा६३ पृष्ठ ,
- ^{viii} सृजनशीलताडॉ नामवर सिंह ,भूमिका से ,रमेश उपाध्याय.सं ,
- ^{ix} कविता में औरत३४ पृष्ठ ,अनामिका ,
- ^x वही३६ पृष्ठ ,
- ^{xi} उपनिवेश में स्त्री१९९ पृष्ठ ,प्रभा खेतान ,
- ^{xii} स्त्रीवादी साहित्य विमर्श पृष्ठ ,जगदीश्वर चतुर्वेदी ,२७६
- ^{xiii} साहित्य के समाजशास्त्र की भूमिका२५० पृष्ठ ,मैनेजर पाण्डेय ,
- ^{xiv} स्त्रीवादी साहित्य विमर्श२७८ पृष्ठ ,जगदीश्वर चतुर्वेदी ,
- ^{xv} वही२७८ पृष्ठ ,